नेपाली अवाम की आवाज को कुचला नहीं जा सकता

ललित

हमारे पड़ोसी देश नेपाल की जनता शाही सेना के बूटों की धमक और आधी रात की दस्तकों के साये तले जीने को मजबूर कर दी गयी है। आपातकाल की बेड़ियों से हिमालय के दक्षिणी ढलान में मुक्ति के लिये उठे कदमों को रोकने की

नापाक साजिशें रची गयी हैं। हिन्दुस्तान का छात्र-नौजवान—जो आपातकाल शब्द के अर्थ से वाकिफ है—नेपाल में घट रही घटनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। जनतांत्रिक अधिकारों का अपहरण किसी भी न्यायप्रिय व्यक्ति के लिये शोचनीय है।

26 नवम्बर 2001 को नेपाल के महाराजा ने देश में आपातकाल की घोषणा कर दी। इसके साथ ही उन्होंने 'टाडो' नाम से आतंकवाद विरोधी अध्यादेश भी जारी कर दिया। कहा यह जा रहा है कि 'माओवादी आतंक' से देश को खतरा है। ये वही माओवादी हैं जिन्हें 26 नवम्बर से पहले माओवादी विद्रोही कहा जा रहा था और जिनको एक राजनीतिक शक्ति मानते हुए सरकार ने अगस्त से नवम्बर माह तक लगभग तीन महीने वार्ताओं के कई दौर चलाये। आज उन्हें आतंकवादी कहा जा रहा है।

माओवादियों की तीन मुख्य मांगें हैं: गणराज्य की स्थापना, संविधान सभा का चुनाव और अंतरिम सरकार का गठन। कोई भी व्यक्ति, जिसकी लोकतांत्रिक मूल्यों में आस्था है, जानता है कि किसी भी जनतंत्र के लिये ये बुनियादी मांगें हैं।

लेकिन, नेपाल के सत्ताधारियों ने इन मांगों को भी ठुकरा दिया। जनाकांक्षा का गला घोंटने के लिए फौज का सहारा लिया गया।

यह किसी देश की जनता को तय करना होता है कि वह अपने देश में कैसी शासन व्यवस्था चाहती है, उसके राज-काज-समाज का पूरा तंत्र कैसा हो। यह कोई राजा या उसका मुदर्रिस सजावटी प्रधानमंत्री नहीं तय कर सकता कि राजशाही और दिखावटी लोकतंत्र के गठबन्धन का राज ही ब्रह्मा का विधान है। इस रूप में देखें तो किसी भी देश को भी यह हक नहीं है कि नेपाल के आंतरिक मामलों में दखल दे। इसके साथ ही, यह हर इंसाफपसंद जन का फर्ज है कि दुनिया के किसी भी कोने में यदि कोई स्वतंत्रता-समानता के लिए न्यायपूर्ण संघर्ष चल रहा है तो वह उसकी पुरजोर तरफदारी करे। प्रसंगवश यह याद करना होगा कि 1947 से पहले भारत की आजादी के आन्दोलन के समर्थन में ब्रिटेन के छात्रों-नौजवानों ने सड़कों पर उतरकर जुलूस-प्रदर्शन आयोजित किये थे।

नेपाल में चल रहे आन्दोलन से नेपाल का सत्ताधारी वर्ग ही नहीं, साम्राज्यवाद भी चिन्तित है। अफगानिस्तान एवं अन्य क्षेत्रीय हालात से यह देखा जा सकता है कि आज अमेरिका दक्षिण एशिया में अपने लूट के तंत्र को विकसित करने की सुनियोजित चालें चल रहा है। इस क्षेत्र में कोई भी जनान्दोलन उसे बर्दाश्त नहीं। नेपाल पर उसके बयानों से इसे समझा जा सकता है। नेपाल सहित तमाम शासक वर्गों के बयानों को देखें तो उनमें इतनी समानता दिखेगी जैसे एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हों। नेपाल के ब्रधनमंत्री शेर बहादुर देउबा ने माओवादी आन्दोलन के सम्बन्ध में अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि एक फेल विचारधारा को 'अफोर्ड' नहीं किया जा सकता । दरअसल, भूमण्डलीकरण के इस दौर में देउबा जी और उनके राजा जी ही क्या, कोई भी जनविरोधी शासक किसी भी जनान्दोलन को 'अफोर्ड' नहीं कर सकता।

नेपाल एक ऐसा पिछड़ा देश है जहां 70 फीसदी से ज्यादा लोग गरीबी रेखा से नीचे का जीवन जी रहे हैं। यहां की 80-85 फीसदी जनता ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। भौगोलिक दृटि से नेपाल चारों ओर से जमीन से घिरा क्षेत्र है, जो पूर्व, पश्चिम और दक्षिण-तीन ओर से भारत से घिरा है। उत्तर में चीन स्थित है। नेपाल के पहाड़ी क्षेत्रों में ऐसे-ऐसे दुर्गम स्थान हैं जहां गरीब जनता रहती है, और जहां पहुंचने के लिये कोई यातायात की सुविधा नहीं, कई दिन पैदल चलकर आप वहां पहुंच सकते हैं। नेपाल का दक्षिणी हिस्सा मैदानी क्षेत्र है, यह पूरब से पश्चिम तक फैला तराई इलाका है जहां बड़े-बड़े जंगल हैं और खेती योग्य जमीन है। नेपाल प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न क्षेत्र है। कहा जा सकता है कि नेपाल की गरीबी प्रकृति प्रदत्त नहीं बल्कि निरंकुश राजशाही और सामंती महाप्रभुओं के साम्राज्यवाद के साथ मिलकर की जा रही लूट के कारण पैदा हुई है। नेपाल की मेहनतक़ा जनता पर राज़ाही और स्थानीय सामंतों के बर्बर शोषण-दमन-अत्याचार की एक लम्बी दास्तान है। इसके साथ ही साम्राज्यवादियों की नजर भी इस पर हमेा बनी रही। एक समय का समृद्ध-आत्मनिर्भर देश आज एक गरीब देश के रूप में जाना जाता है। नेपाली कहते ही हमारे सामने एक "वफादार" सेवक का चित्र आता है—कुली, मेट, चौकीदार, नौकर, सैनिक वाला चित्र। माओवादी नेपाली मेहनतकश जनता के मुक्ति के स्वप्नों को साकार करना चाहते हैं, यही कारण है कि उनका नेपाल में व्यापक जनाधार है। इस तथ्य को न चाहते हुए भी वहां की सरकार गाहे-बगाहे स्वीकार करती है। माओवादियों की सफलता या असफलता का प्रश्न दीगर है, लेकिन यह बात पक्के तौर पर कही जा सकती है कि नेपाली जनता की इंसाफ, हक और आजादी के सपनों को अब कोई भी 'आपातकाल' नहीं कुचल सकता।

नेपाली जनता ने अतीत में भी शानदार लड़ाइयां लड़ी हैं। सन् 1815 में ब्रिटिश भारत के साथ हुए संघर्ष में नेपाली जनता ने अंग्रजों का बहादुरी के साथ मुकाबला किया था। लेकिन तत्कालीन राजशाही के अंग्रेजों के

सामने घुटने टेक देने के कारण नेपाल को ब्रिटिश भारत के साथ सुगौली संधि के लिए मजबूर होना पड़ा। नेपाल का एक बड़ा हिस्सा ब्रिटिश भारत ने अपने कब्जे में ले लिया, 1846 में राणाशाही कायम हुई। इस शासन के मुखिया जंगबहादुर राणा को तो अंग्रजों का पिट्ठू माना जाता है।

सुगौली संधि के बाद से ही आत्मनिर्भर देश नेपाल एक अर्द्धउपनिवेश की स्थिति में आ गया। उसके आत्मनिर्भर स्वतंत्र विकास का रास्ता अवरुद्ध हो गया। इस संधि के बाद से भारतीय कारखानों में बना माल नेपाल के बाजार में पहुंचने लगा। इसके चलते नेपाल में पूंजीवाद का स्वाभाविक विकास भी बाधित हुआ। सन् 1947 में भारत को अंग्रजों की दासता से मुक्ति मिली लेकिन, जैसा कि आज साफ हो चुका है कि यह अधूरी आजादी थी। आजादी को हिन्दुस्तान का पूंजीपति वर्ग ले उड़ा। मुनाफाखोरों की मुनाफे की हवस के कारण आज जहां हिन्दुस्तान की जनता गरीबी-भुखमरी-बेकारी के नरक में जीने को अभिशप्त है, वहीं नेपाली जनता पर भी इन मुनाफाखोरों की शनिछाया बनी रही। एक अध्ययन के अनुसार नेपाल के 80 फीसदी उद्योग और वाणिज्य पर भारतीय पूंजीपतियों अथवा भारतीय मूल के पूंजीपतियों का कब्जा है। यही नहीं, जब से भारतीय पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद का जूनियर पार्टनर बनना शुरू कर लिया है, तब से साम्राज्यवाद भारतीय पूंजीपति वर्ग के कंधे पर चढ़कर नेपाल के बाजार पर कब्जा कर रहा है। इस लूट में नेपाल का शासकवर्ग भी साझीदार है अपनी हैसियत के अनुसार। इस लूट की चक्की में नेपाली जनता बरयों से पिस रही है। यह अकारण ही नहीं है कि नेपाली जनता जब आन्दोलित होती है, तो उसके अन्य नारों के साथ 'भारतीय विस्तारवाद मुर्दाबाद' का नारा भी प्रमुख होता है। नेपाली जनमानस में कमोबेश भारतीय पूंजीपतियों -भारतीय शासकवर्ग की वही छवि है, जैसी गुलामी के दिनों में भारतीय मानस के बीच अंग्रेज लुटेरों की छवि थी। दूसरी तरफ नेपाली जनता का भारतीय जनता के साथ

(पृष्ठ 27 पर जारी)

अर्जेण्टीना :
मुद्रा कोष-विश्व बैंक की नीतियों से आर्थिक-राजनीतिक संकट गहराया

शिशिर

अर्जेण्टीना विश्व के आर्थिक इतिहास में पहला ऐसा सम्प्रभु राष्ट्र बन गया जिसने अपने आप को 'दीवालिया' घोषित कर दिया। अर्जेण्टीना ने नये साल का यह 'शानदार' स्वागत मुद्रा कोष की सहायता से किया। हालांकि लातिनी अमेरिकी देशों में इस तरह के आर्थिक ध्वंस का रिवाज नया नहीं है (आई.एम.एफ. के मॉडलों, मेक्सिको और ब्राजील का पतन), लेकिन अर्जेण्टीना ने जो किया है, वह एक मिसाल है। अर्जेण्टीना की आर्थिक तबाही का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि मुद्रा कोष के भक्त वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा तक ने कहा कि अर्जेण्टीना की मौजूदा दशा देखकर 'हड्डियों में झुरझुरी हो रही है।

यह बात काबिले-गौर है कि अर्जेण्टीना अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा बैंक के उत्तम मॉडलों और सबसे वफादार ग्राहकों में से एक है। जो अर्जेण्टीना चार-पांच साल पहले लातिन अमेरिका के सबसे अमीर देशों में से था, आज वह दिवालिया हो चुका है। उसकी गिनती दुनिया के पांच सबसे बड़े कर्जदारों में होती है। उसके सर पर 155 अरब डॉलर का कर्ज है, जिसका ब्याज भी चुकाने के काबिल नहीं। दिसम्बर 2001 से अर्जेण्टीना की तबाही की शुरुआत हुई। तब से वहां रोज 2000 लोग गरीबी रेखा से नीचे चले जा रहे हैं। आखिरी खबर मिलने तक तीन करोड़ सत्तर लाख की आबादी वाले अर्जेण्टीना की लगभग 35 प्रतिशत से ज्यादा आबादी गरीबी रेखा के नीचे जा चुकी है। बेरोजगारी की दर 35 से 40 प्रतिशत के बीच जा पहुंची है। जेम्स पेत्रास नामक एक लातिन अमेरिकी बुद्धिजीवी के अनुसार कुछेक इलाकों में कुल श्रमशक्ति का 60 प्रतिशत हिस्सा बेरोजगार है। पिछले एक महीने में चार राष्ट्रपतियों का बदला जाना एक आर्थिक संकट का राजनीतिक अनुवाद ही था, जो अस्थिरता के रूप में सामने आया। मौजूदा राष्ट्रपति एदुआर्दो दुआल्दे के भी ज्यादा टिकने की उम्मीद बेकार है। इसकी वजह यह है कि वह भी मुद्रा कोष और विश्वबैंक के इशारों पर नाचने वाली कठपुतली है और जनता के सब्र का प्याला छलक चुका है। अर्जेण्टीना की राजधानी ब्यूनस आर्यर्स में लोगों को आम रोज-ब-रोज की जरूरत के सामान बाजारों में लूटते देखा जा सकता है। और भी हैरानी की बात यह है कि लोगों में न सिर्फ गरीब-बदहाल लोग हैं बल्कि मध्यवर्ग के लोग भी हैं। लोग अब विश्वबैंक-मुद्रा कोष के ढांचागत समायोजन की हकीकत को समझ रहे हैं। उनके सामने मेक्सिको का उदाहरण भी है, जो ढांचागत समायोजन द्वारा ठिकाने लगाया जा चुका है। दिसम्बर में जनता ने फर्नांदो द ला रुआ की सरकार को अस्वीकार कर दिया साथ ही आई.एम.एफ. के दलाल वित्त मंत्री दोमिंगो कावालो के "किफायतशारी" के उपायों को लात मार दी।

अर्जेन्टीना में मुद्रा कोष की घुसपैठ 1980 के दशक की शुरुआत में हुई जब अर्जेन्टीना अपने कर्जे चुकाने में असमर्थ हो गया। 1978 में अर्जेन्टीना पर कुल विदेशी कर्ज आठ अरब डालर था जो 2001 तक 155 अरब डालर हो गया, यानी 23 वर्षों में 19 गुना वृद्धि। विदेशी कर्ज की जांच के लिए जो न्यायिक प्राधिकरण बैठा, उसने तत्कालीन केन्द्रीय बैंक गवर्नर दोमिंगो कावालो को हेराफेरी के लिए दोषी ठहराया था। 80 के दशक के पूर्वार्द्ध में जिन देशों को मुद्रा कोष के आर्थिक कारस्तानियों की

प्रयोगशाला बनना पड़ा उसमें अर्जेन्टीना के अतिरिक्त, ब्राजील, मेक्सिको, पेरू आदि भी शामिल थे। 1980 से 1990 के बीच में जहां अर्जेण्टीना की जी.डी.पी. की वृद्धि दर −0.7 रही वहीं मुद्रास्फीति की दर 583.8 प्रतिशत तक पहुंच गयी। इस समस्या के "निदान" के तौर पर मुद्रा कोष ने तत्कालीन राष्ट्रपति कार्लोस मेनेम पर दबाव डालकर अपने चहेते दोमिंगो कावाले को वित्त मंत्री बनवाया। यह जनाब वही हैं जिन्हें न्यायिक प्राधिकरण ने हेराफेरी और विदेशी कर्जे की लूट में दोषी पाया था। अर्जेण्टीना के बरबाद होने से पहले तक उन्हें तीसरी दुनिया के देशों के वित्त मंत्रियों के सामने 'मॉडल की तरह पेश किया जाता था।

2001 में कावालो ने मुद्रा कोष-विश्व बैंक के समायोजन कार्यक्रम को लागू किया। इसके अतिरिक्त उसने फिक्स्ड' विनिमय व्यवस्था लागू की जिसके निहितार्थ यह थे कि अर्जेण्टीना विदेशी निवेशकों, अमेरिकी केन्द्रीय बैंक का गुलाम बनने को तैयार है। इस व्यवस्था में एक पेसो (अर्जेन्टीनियन मुद्रा) का विनिमय एक डॉलर से होता था। इसका मतलब था अर्जेण्टीना की अर्थव्यवस्था के पूर्ण डालरीकरण की मंजूरी।

इस व्यवस्था के लागू होने के बाद मेनेम-कावालो की जोड़ी को एक पेसो बराबर एक डालर की विनिमय दर को बरकरार रखना था। इसके लिए उन्हें वित्तीय घाटे को घटाना था। इसके कारण उन्होंने निजीकरण का अभियान छेड़ दिया। भारत की तरह वहां भी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को औने-पौने दामों में विदेशियों के हवाले करने का अभियान चला, सरकारी कर्मचारियों की संख्या में भारी कटौती हुई। किफायतशारी के नाम पर छंटनी, ले-ऑफ, वेतन व पेंशन में कटौती जैसे फैसले जनता पर थोप दिये गये। मुद्रा की कीमत में वृद्धि से निपटने के लिए मजदूरी में भारी कटौती की गयी। इस काम को अंजाम देने के लिए घरेलू मांग में कमी और रोजगार में भी कटौती की गयी।

मांग में कमी, वेतन में कटौती आर्थिक मन्दी में फलीभूत होना स्वाभाविक था। और यहीं से अर्जेण्टीनी अर्थव्यवस्था की दीवार दरकना शुरू कर देती है, और चार-पांच साल में हालत यह हो जाती है कि आधुनिक विश्व इतिहास में पहली बार किसी देश का राष्ट्रपति अपने देश को दीवालिया घोषित करने को बाध्य हो जाता है।

अर्जेण्टीनी अर्थव्यवस्था का पतन आज तमाम मुद्दों पर सोचने को हमें बाध्य करता है। "इतिहास के अंत", "पूंजीवाद की विजय", "समाजवाद की पराजय" के विक्षिप्त शोर के बीच एक के बाद एक मुद्रा कोष-विश्व बैंक के मॉडलों ओर 'एशियन टाइगर्स' का पतन हमें इन चीजों पर सोचने को मजबूर कर देता है। बारी-बारी से मेक्सिको, ब्राजील, अर्जेण्टीना, थाईलैण्ड, ताइवान आदि देशों की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का ताश के पत्तों की तरह भरभरा कर ढह जाना स्पष्ट रूप से यह दिखलाता है कि पूंजीवाद मानवता के विकास की अंतिम मंजिल नहीं है। यह मानव समाज इस कदर विकल्पहीन नहीं हो सकता कि हम एक विक्षिप्त, मानवद्रोही व्यवस्था की जगह एक न्यायपूर्ण, समानतापूर्ण व्यवस्था नहीं ला सकते। ये घटनायें जिनका बयान हम ऊपर कर आये हैं, विश्व-पूंजीवाद के एक लाइलाज रोग की ओर इशारा करती हैं। यह रोग है—मंदी। यह चीज सभी पूंजीपतियों के स्वप्नों में खलनायक का पार्ट अदा करती है। बाजार, सस्ते श्रम और मुनाफे की हवस उनके तावूत में कील का काम करती है। "इतिहास के अंत", "मानवता के अंत" की बकवासों के बीच से एक विकल्प की आवाज को उठाना आज हर ईमानदार, इंसाफपसन्द, संवेदनशील और बहादुर नौजवान का कर्तव्य है। यह विकल्प क्या हो यह भी हमें ही सोचना है। हमारे पास विकल्प देने वालों की विरासत भी है और इतिहास भी। शहीदे आजम भगतसिंह जैसे व्यक्तित्व विकल्प तैयार करने की राह में हमेशा मशाल बनके हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। देर सिर्फ हमारे सोचने और सक्रिय होने की है, क्योंकि अर्जेण्टीना की कहानी भारत की कहानी बन जाये तो बहुत हैरानी की बात न होगी।

●

नेपाली अवाम की आवाज को कुचला नहीं जा सकता

(पृष्ठ 26 से आगे)

आत्मीयता का वह रिश्ता है कि जब भारत में आपातकाल लागू था, तो यहां से भागकर छिपने के लिये जो भारतीय नेता नेपाल गये थे उन्हें नेपाली जनता ने अपना रक्षा कवच प्रदान किया था। भारत और नेपाल की मेहनतकश जनता के आपसी प्रगाढ़ रिश्तों को तो सभी स्वीकारते हैं।

भारत के इंसाफपसंद लोगों को आज चाहिये कि संकट के इस मौके पर नेपाल की जनता के साथ एकजुटता प्रदर्शित करें। गणराज्य की स्थापना, संविधान सभा का चुनाव और अंतरिम सरकार का गठन कोई आतंकवादी मांगें नहीं हैं, बल्कि एक सभ्य समाज, एक समतामूलक समाज की चाह रखने वाली शांतिप्रिय जनता की मांगें हैं। इसलिए, इन मांगों पर माओवादियों के नेतृत्व में नेपाल में चल रहे जनसंघर्ष के दमन के खिलाफ आवाज उठाना हर इंसाफपसंद, जनतांत्रिक मूल्यों में आस्था रखने वाले लोगों का दायित्व है। मीडिया के जरिये भारतीय शासक वर्ग इस संघर्ष की जो तस्वीर पेश कर रहा है, उसका सच्चाइयों से कोई लेना-देना नहीं है। साथ ही, तमाम "राष्ट्रीय" अखबारों में भरत सरकार द्वारा नेपाल के माओवादी आन्दोलन को कुचलने के लिये सैनिक साजो-सामान भेजने की जो खबरें आयी हैं, वे भी चिन्तनीय हैं। जिस तरह भारत के अन्दरूनी मामलों में कोई बाहरी दखल नहीं बर्दाश्त की जानी चाहिये, उसी तरह नेपाल के अन्दरूनी मामलों में दखल देने का पुरजोर विरोध किया जाना चाहिये। सरकार की गलत नीति का भी समर्थन करना राष्ट्रभक्ति नहीं है, इसलिए, सभी इंसाफपसंद, जनतंत्रप्रिय छात्रों-युवाओं-आम नागरिकों को भारतीय शासकों के साथ खड़े होने के बजाय नेपाल की संघर्षरत जनता के साथ खड़े होना चाहिए।

●